ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3587343

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

लोककला के प्रतीकों द्वारा वस्त्रसज्जा

डॉ. कुमकुम भारद्वाज [1], भाग्यश्री कुलकर्णी [2]
[1] प्राध्यापक, चित्रकला, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय किला भवन, इंदौर
[2] अतिथि व्याख्यता आईपीएस अकादमी इंदौर

शोध-सारांश
लोककला अंग्रेजी के फोक शब्द का अर्थ एक स्थान पर रहने वाले मानव समूह से है, और फोक आर्ट का अर्थ उस समूह की परम्परागत कला से लगाया जाता है हिन्दी में इसके हेतु लोक शब्द का प्रयोग होता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार लोक शब्द का अर्थ जनपद अथवा ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।

मुख्य शब्द – लोककला, वस्त्रसज्जा, प्रतीकों द्वारा

Cite This Article: डॉ. कुमकुम भारद्वाज, भाग्यश्री कुलकर्णी. (2019). "लोककला के प्रतीकों द्वारा वस्त्रसज्जा." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 181-184. https://doi.org/10.5281/zenodo.3587343.

श्रीयुत शेलेन्द्रनाथ सामन्त के अनुसार लोककला जन सामान्य विशेषतः ग्रामीणजनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। अन्य विद्वान ने लोक कला की परिभाषा के संबंध में जो विचार व्यक्त किये है, उन सबका निष्कर्ष यही है कि पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित सामान्य जन समुदाय भी अनुभूति की अभिव्यक्ति ही लोक कला है। लोक कलाt की उत्पत्ति धार्मिक भावनाओं, अन्धविश्वासों, भय निवारण अलंकरण, प्रवृत्ति तथा जातिगत भावनाओं की रक्षा के विचार से हुई, लोक-कला स्थानीय होती है, राजा, रंक, धनी और निर्धन सबने इसका उपयोग किया है। पढ़े और बिना पढ़े, मुर्ख और विद्वान ग्रामीण और नागरिक सभ्य और असभ्य सभी के लिए कला अपना विलक्षण सौन्दर्य प्रस्तुत करती है। लोककला मन की सहजावस्था में आदिम आनन्द की अजस्त्र धारा है जिसमें समय तथा स्थान की नवीन चेतना भी छोटी-छोटी धाराएँ मिलती है और विलिन होती रहती है। आदिम की भाँति लोककला मनुष्य की अन्त प्रेरणा का सहज तथा नैसर्गिक प्रस्फुटन है।

लोककलाओं का मनुष्य के जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है। मनुष्य के जीवन में लोककलाएँ नहीं होती तो उसके मन का सौन्दर्य कब का ही समाप्त हो जाता, लेकिन लोककला ही ऐसा माध्यम रहा है जिसके सहारे मनुष्य अपनी सौन्दर्य अनुभूति, अपनी प्रफुल्लता, अपने मन की कोमलता को अभिव्यक्त करता आया है। लोककलाओं की अभिव्यक्ति प्रतिकों के माध्यम से होती है। परम्परागत लोककलाओं में सशक्त प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। प्रतीकों का यह विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ चला है। प्रयोगों के आधार

पर इनके निश्चित अर्थ हर अंचल में प्रचलित रहे है। श्रीमती अर्चन धनंजय ने मिथकथा चित्रों के अध्ययन में एक स्थान पर लिखा है –

"सारे चित्र रेखाओं के माध्यम से किसी ना किसी भारतीय प्रतीकों, बिम्ब और मिथकथाओं को अभिव्यक्त करते है। रंग भी निरर्थक नहीं भरे जाते, वहां रंगों के अर्थ भी गहरे और व्यापकता लिये हुए होते है। एक-एक बिन्दु अपनी जगह पर नये सौन्दर्य बौध और आशय के लिए प्रयुक्त किया जाता है। एक बिन्दु या एक रेखा के आधिक्य या कुछ टेड़ाकर देने पर कोई अलग चित्र बन जाता है। दो समानचित्रों में भिन्नता पैदा हो जाती है। यह लोक कलाकार की सृजेजनच्छा पर निर्भर है कि वह रेखा को कितनी घुमाये, कितनी सीधी रखे, किसे क्रास करे, कहां तक ले जाये या रेखा को वृत में ढाल दे इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। इसीलिये परम्परा के एक ही चित्र में प्रत्येक हाथ की अलग-अलग विशेषताएँ देती है।

प्रतीक में कहीं गई बातबिम्बों की समानता पर आधारित होती है और मानव मस्तिष्क में किसी वस्तु, विचार या भाव का चित्र बनने लगता है। चित्रकला में वही बात रंगों और रेखाओं और उनमें बनाये गये प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट होती है। प्रतीकों का संवहन विभिन्न अभिप्राय करते है जिनका सम्बन्ध लोक जीवन से होता है। लोककला में प्रतीकों का विभाजन अनेक दृष्टियों से हो सकता है-
1. प्राकृतिक 2. मानवीय 3. देवीय 4. ज्यामितिय एवं सूक्ष्म 5. रंग – सम्बन्धी 6. उपकरण आदि पर आधारित अन्य प्रतीक। प्रमुख प्रतीकों का परिचय निम्न रूप में दिया जा सकता है –

बिन्दु (शून्य) - एकता, उत्पत्ति, आदि अवस्था। बिन्दु से किसी चित्र अलंकरण आदि की शुरूआत होती है। बिन्दु सृष्टि का केन्द्र है। बिन्दु से रेखा, रेखा से शब्द, रेखाओं से अनन्त का सृजन होता है। इसीलिए बिन्दु, पृथ्वी, आकाश और अनन्त का प्रतीक है। बिन्दु में सृष्टि का बीज है। बिन्दु में तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश की शक्तियाँ समाहित है। बिन्दु देवी शक्तियों का भी प्रतीक है।
रेखा - निष्क्रियता, स्थिरता, सक्रियता गति का प्रतीक। लोक चित्रकला में रेखाओं का सबसे अधिक उपयोग और महत्व है। प्रागैतिहासिक चित्रों की तरह लोकचित्रों में भी रेखाएँ उसके मूल में है।
वर्ग - भौतिकता, स्थूलता, स्थिरता का प्रतीक।
शंकरपारा - क्रियाशील भूत।
वर्ग युग्म - पदार्थों का जीवन।
पिरामिड - स्थिरता, अनुगमन का प्रतीक।
त्रिभुज - उर्ध्वगति, विकास।
त्रिभुज (अधोमुख) - लिप्तता का प्रतीक।ज्योमितीय अथवा सूक्ष्म प्रतीक विधान रूप से सांकेतिक अर्थ वहन कराने हेतु ही प्रयुक्त होते हैं।
धन, धन उर्द्धमुखी, धन अधोमुखी - आध्यात्मिकता, उदासीनता, आध्यात्मिक, सक्रीयता (उच्च भूमि पर) आध्यात्मिकता, गतिशीलता का प्रतीक
गुण चिन्ह - आध्यात्मिक, गतिशीलता, उदासीन संयुक्त रूप में पदार्थों पर आध्यात्मिक सक्रियता का प्रतीक।
वृत्त - अनन्त, ब्रह्माण्ड, सम्पूर्णता का प्रतीक। अनन्त सृष्टि का मूल वृत्त का अर्थ गोल, आकृतियों से है, जिनका प्रयोग लोक कला में बहुतायत से होता है। वृत ब्रह्माण्ड की संपूर्णता का प्रतीक है। तंत्र में वृत्त को मंडल कहते है। वृत्त कुंडलिनी का प्रतीक है। वृत्त के केन्द्र में बिन्दु है।
समद्विभाजित वृत्त - अन्तरिक्ष एवं भूमि का प्रतीक।
चक्र - गति, कालचक्र, नियम, सृष्टि पुर्नजन्म, उत्थान, पतन। चक्र काल और गति का प्रतीक है। इसकी तुलना सदैव संसार चक्र से की जाती है। चक्र का सम्बन्ध सृष्टि के रक्षक भगवान, विष्णु और श्रीकृष्ण से भी है। तंत्र

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3587343

में चक्रों का सर्वाधिक महत्व है। लोकचित्रों में चक्र और चक्र पर आधारित अनेक आकृतियों का निर्माण किया जाता है। मॉडनों के मूल में चक्र ही होता है। खासकर कमल का फूल चक्र पर विकसित होता है जो मॉडनों का प्राण है। सूर्य के आसपास ग्रह नक्षत्रों का चक्र दिन, पक्ष, माह, }तुओं और वर्ष का प्रतीक है।
पंचकोण - सांसरिक ऐन्द्रियता, पंच महाभूत का प्रतीक।
स्वास्तिक - दृढ़तापूर्ण, गति का प्रतीक। स्वास्तिक को चौक और सातियाँ भी कहते हैं। चौर और सातियों की कई परम्परागत आकृतियाँ है। स्वास्तिक वेदकालीन प्रतीक चिन्ह है। लोक में भी स्वास्तिक की प्रतिष्ठा सर्वत्र है। स्वास्तिक की चार भुजाएँ, चार दिशाओं, केन्द्र, बिन्दु, सृष्टि और अग्नि इन्द्र, वरूण और सोम देवता का प्रतीक है। स्वास्तिक मांगलिकता, भारतीय धर्म, दर्शन और आध्यात्म का प्राचीन प्रतीक है।
पशु – पक्षी - मानव का सच्चा सहयोगी पशु-पक्षी से बढ़कर कोई नहीं था। लोकचित्रों में पशु-पक्षी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हाथी, वृषभ, शुक, नाग, मोर, कछुआ, मछली, अश्व, कपोत तथा अन्य पशु-पक्षी। लोकचित्रों में सूर्य, चन्द्र अनिवार्य रूप से बनाये जाते है। सूर्य, चन्द्र दिन-रात के प्रतीक है। सूर्च चन्द्र शास्वत का प्रतीक है। मातृ सत्तात्मक से पितृ सत्तात्मक परम्परा में सक्रमण के समय सूर्य का पुरुषों एवं चन्द्र का स्त्रियाअें से सम्बन्ध माना गया है।
पेड़-पौधे - वनस्पति जगत के पेड़-पौधों एवं फूलों का लोक कला में चित्रण प्रतीक के रूप में किया गया है। अलंकरण के अंकन लोक चित्रों में किया जाता है।
नारियल - कलश के साथ नारियल या श्रीफल का अंकन अवश्य किया जाता है। श्रीफल सभी देवताओं को चढ़ाया जाता है। शुभ कार्यो में नारियल एक अनिवार्य फल है। इसके वृक्ष का अंकन लोकचित्रों में मिलता है।
मानवाकृति- मनुष्य ब्रह्माण्ड की व्यक्त सत्ता का प्रतीक माना जाता है। जो मनुष्य के पिण्ड में है। वही समग्र (ब्रह्माण्ड) में है। मानवीय प्रतीक में नर तथा नारी समान रूप से आते हैं, और इसी आधार पर दोनों के समन्वित गुणों के प्रतीक रूप में अर्ध नारीशवर की कल्पना की गयी है। देवी प्रतीकों के द्वारा भी सृष्टि के रहस्यों को प्रस्तुत करने की चेष्ठ की गयी है। इनमें से अनेक आदर्श मानवीय रूपों से विकसित हुए हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम। राम शील, शक्ति तथा सौन्दर्य के प्रतीक है। श्रीकृष्ण धार्मिक रूप में, ब्रह्म और कलात्मक रूप में लौकिक आनन्द की प्रतीकता लिए हुए है। राधा कृष्ण का रास भी प्रतीक है। शिव, ब्रह्मा, विष्णु इनमें सूर्य तथा चन्द्र का प्रमुख स्थान है, सूर्य को सर्वोत्तम पद प्रदान किया गया है।

चार महाभूतों को निम्नांकित अलंकारिक प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया है- जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी । **लोकरंग-** भारतीय तत्व दर्शन में त्रिगुणात्मिका सृष्टि के तीन रंग माने गये है :- सत्व का श्वेत, रजम् का लाल और तमस् का काला। लोकचित्रों के मूल रंग गेरू, खड़िया, हल्दी कोयला ओर पत्तों से प्राप्त किए जाते है। विभिन्न रंगों का प्रभाव मानव मूल शरीर पर सहज रूप से होता है। लोक चित्रों में रंगों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से उनके सन्दर्भों, अर्थों और आशयों के अनुरूप होता है।

मन की निश्च्लता लोकचित्रों की आत्मा होती है। न्यूनतम आवश्यकताओं तथा उपलब्ध साधनों में उन्मुक्त जीवन जीने वाली लोक प्रकृति ने अपने अन्तर को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करने वाली औपचारिक इच्छाशक्ति ने लोक कलाओं का लोकजीवन से व्यापक गहन और चहुमुखी सम्बन्ध स्थापित किया और यह कला लोकजीवन की दिनचर्या बन गई।

विभिन्न अंचलों की यह कला, घर, आंगन, तीज, त्यौहार से निकलकर वस्त्र सज्जा में पारम्परिक प्रतीकों के अंकन, के साथ प्रयुक्त हो रही है। आज के आधुनिक युग में इस चित्रांकन में परिवर्तन आया है। रूप वही है स्वरूप बदल चुका है। वस्त्र सज्जा में लोक चित्रों का अंकन देखकर मन में मंगल भावना का संचार होता है।

अपने नये स्वरूप में विभिन्न आकार, प्रकार एवं चटख रंगों को अपने में समाहित किए हुए यह कला एक प्रतीक सौन्दर्य धारण किये हुए, लोक जवीन में अपनी पहचान बनाये हुए है।

एक कला का उपयोग करते हुए वस्त्रों को अनेक प्रकार की कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। उन्हें रंगने, छापने, बुनने और सुई-धागों से ही अलंकृत नहीं किया जा रहा वरन् उन पर विभिन्न प्रकार के प्रतीकों द्वारा अलंकरण बनाए जा रहे है। इन सब कार्यों में प्रकृति की अनुकृति से लेकर सूक्ष्मतम एवं आलंकारिक रूप भी प्रस्तुत किये जा रहे है।

संदर्भ

[1] लोक-कला और उसके अवयव, दैनिक नवभारत टाईम्स, 20.12.59 पृष्ठ 05 ।
[2] भारतीय कला: पृष्ठ 70, 71 - डॉ. वासुदेव अग्रवाल।
[3] हमारी संस्कृति के प्रतीक: पृष्ठ 77, 78 - प्रकाशक सम्ता साहित्य मंडल, दिल्ली-1980, श्री महादेवी शास्त्री जोशी ।
[4] भारत की लोककला और हस्त शिल्प: जसलीन धमीजा, प्रकाश नेशनी बुक ट्रस्ट, इंडिया।
[5] इंटरनेट गुगल सर्च इंजन: याहू
[6] Encyclopedia of world arts, folk art, column 452-453
[7] कला समीक्षा: जी.के. अग्रवाल - पृष्ठ 188-189, 123-124, 134, 135 एवं अन्य पृष्ठ।